नतीजा

चित्रा मुद्गल

नतीजा

पुरबी दी के सामने उद्विग्न भाव से रूमा ने 'होम' की बच्चियों की छमाही परीक्षा के कार्ड सरका दिए। नतीजे पहली कक्षा के थे। 'होम' में कुल सत्ताईस बच्चियाँ थीं, जिन्हें लगातार डेढ़-दो वर्षों के माथाफोड़ परिश्रम के उपरांत नगरपालिका के स्कूल में दाखिल कराया जा सका था।

सबसे पहला कार्ड पुरबी दी ने पियासी का खोला। नंबरों पर घूमती नजर के साथ ही उनके दिपदिपाए चेहरे पर विषाद अचानक सँवलाई बदलियों-सा गहरा आया - "पियासी में जरा भी सुधराव नहीं आया, बाकियों का क्या हाल है?"

"बहुत बुरा। प्रिंसिपल ने बुलवाया था। वहीं से आ रही हूँ।"

दूसरे कार्ड पर अंकित शून्यों से गुजरते हुए पुरबी दी ने पल-भर को कार्ड पर से आँखों को अलग कर चिंतित भाव से रूमा की ओर देखा। - "क्या कहा?"

'चिड़चिड़ा रही थीं। दाखिल क्यों कराया है आपने इन बच्चियों को, जो पढ़कर देने को राजी नहीं!"

"पिछली बार महीने के टेस्ट में बिजली ने काफी कुछ ठीक किया था। इस बार उससे पहले से बेहतर की उम्मीद थी..." रूमा ने वाक्य पूरा नहीं किया।

"फिर?" पुरबी दी की आँखें दूसरे कार्ड पर लिखी क्लास टीचर की निराशाजनक तीखी टिप्पणी से किरकिरा आईं।

"दी, खुद ही देख लें"

पुरबी दी ने आगे प्रति-प्रश्न नहीं किया। नतीजे का अंतिम कार्ड बड़ी-बड़ी आँखों वाली सलोनी बच्ची शिवानी का आया उनके सामने। सभी विषयों के सामने तीखी चोंच खोले सतर्क गिद्ध से शून्य के गोले बैठे हुए नजर आए। क्या होगा शिवानी का? सोना गाछी की एक अँधेरी, सड़ांध-भरी कोठरी में उसकी माँ 'एड्स' की चपेट में है। माँ की लाख मिन्नतों के बावजूद उन्होंने, माह में एक बार बेटी को देख लेने की उसकी ललक को निष्ठुरता से ठुकरा दिया था। अस्पताल में भर्ती हो जाए, इलाज कोई चमत्कार दिखलाए, तभी वे शिवानी को उसे निकट से नहीं, दूर से दिखा सकेंगी। ऐसे ही उसे सब्र करना सीखना होगा।

माँ की याद में रह-रह हुड़कने वाली शिवानी ने माँ से मिलने को कम हठ नहीं किए। एक दफे तो वह चौकीदार की आँख में धूल झोंके गेट से बाहर होने में सफल हो गई। गनीमत हुई कि होम की ओर आती हुई रूमा की नजर उस पर पड़ गई। छह वर्ष की नन्ही बच्ची का साहस देख सभी स्तब्ध रह गए!

तीन दिन तक पुरबी दी शिवानी को गैरेया-सी सीने से चिपकाए उसकी सुबकियों के मोती आँचल में चुनती रहीं। समझाती रहीं। अब 'होम' ही उसका घर है - अन्य बच्चियाँ उसकी बहनें।

नतीजों को मेज के एक ओर सरका वे अपनी कुरसी की पिछाड़ी पर शिथिल-सी टिक गईं। नतीजों के शून्य उनकी आँखों में उतर आए। सवाल कुतरने लगे। एक भी बच्ची उत्तीर्ण नहीं हुई। अधिकांश ने सभी विषयों में शून्य ही अर्जित किया है। ऐसा नहीं कि स्कूल में दाखिले से पूर्व उनकी प्रारंभिक तैयारी नहीं करवाई गई। डेढ़ वर्ष से रूमा निरंतर उन्हें पढ़ा रही है। अब भी दो-अढ़ाई घंटे पढ़ाती है। स्कूल में दिए गए होमवर्क करवाती है। आगे के पाठों की पहले से ही तैयारी करवाती है ताकि स्कूल में पढ़ाए जाने पर उन्हें दिक्कत न हो। बच्चियाँ अक्षरों को पहचान सकें, शब्दों को उच्चार सकें।

रूमा ने उन्हें बाहर खींचा, "आपके नाम प्रिंसिपल साहब ने खत भेजा है, पढ़ लें, दी।"

"ओS हाँ!"

पुरबी दी ने अन्यमनस्कता को झटक पत्र खोल लिया। पत्र क्या था, जहरीली शिकायतों का पुलिंदा। हर वाक्य चाबुक की शक्ल में उन पर बरसने लगा कि - उन्हें नहीं लगता कि ये बच्चियाँ तीन साल में भी पहली कक्षा पार कर पाएँगी। अजीबोगरीब हरकतें करती रहती हैं। प्रत्येक कक्षा में उन्हें पाँच-छह दफे पेशाब लगती है। छुट्टी न दी जाए तो जहाँ बैठी हैं वहीं मूत लेती हैं। छुट्टी देने पर पाखाने से कक्षा में नहीं पलटतीं। पेड़ों के नीचे फुगड़ी खेलती नजर आती हैं या कंकरियाँ बटोर गिटकें खेलने बैठ जाती हैं। क्यारियों के फूल इनके चलते टहनियों पर नहीं खिल सकते। पानी के नल खुले छोड़ देंगी या अँजुरी में पानी भर एक-दूसरे को छीपेंगी। सवाल के जवाब में गूँगी-बहरी-सी हो टुकर-टुकर ताकती खड़ी रहेंगी। न स्लेट पर कुछ लिखेंगी, न कॉपी में। डाँटने पर जंगलियों की भाँति रो-चीख पूरे स्कूल को सिर पर उठा लेंगी और अन्य बच्चियों की पढ़ाई में बाधा डालेंगी। परले दरजे की उद्दंड जिद्दन हैं। इनकी कॉपियों में टीचरों को होमवर्क स्वयं लिखने पड़ते हैं। मुश्किल यह है, इनकी देखा-देखी शेष बच्चों में भी अनुशासनहीनता पनप रही है। कृपया ध्यान दें। दूसरे बच्चों की शिकायत है कि ये उनकी चाक, पैन्सिलें, रबड़ें चुरा लेती हैं। हालाँकि टीचरों को सख्त आदेश है कि वे अन्य बच्चों के मुकाबले उनसे कोई भेदभाव न बरतें। न उन्हें हेय दृष्टि से देखें, न बेवजह प्रताड़ित करें। प्रश्न यह है कि अकेली टीचर केवल इन्हीं बच्चियों के आगे-पीछे नहीं दौड़ सकती। पूरी कक्षा की ज़िम्मेदारी उसके ऊपर है। यह सब कहने का अर्थ यह नहीं है कि हम यह मानकर चल रहे हैं कि ये बच्चियाँ

असामान्य बच्चियाँ हैं। इतना जरूर मानकर चल रहे हैं कि ये बच्चियाँ अन्य बच्चियों के परिप्रेक्ष्य में भिन्न परिवेश की उपज हैं। इन बच्चियों की मानसिकता में परिवर्तन लाने की ज़िम्मेवारी आपकी है। कृपया इस दिशा में विशेष परिश्रम करें। मात्र उन्हें उस परिवेश से मुक्त करा समाज के सामान्य वर्गों के बीच ला खड़ा कर देने भर से ही कर्तव्य की इतिश्री नहीं हो जाती।

- मेरी बातों को अन्यथा न लें। किसी रोज आकर मिलें, या मुझे 'होम' बुला लें। यकीन मानिए, मैं हर तरह से सहयोग की आकांक्षी हूँ। आपके क्रांतिकारी उद्देश्यों में मेरी गहरी रुचि है। मगर मैं यह भी नहीं भूल पाती कि मैं नगरपालिका के एक बहुत बड़े स्कूल की प्रधानाचार्या हूँ। विद्यार्थियों में अनुशासन बनाए रखना मेरा प्रथम कर्तव्य है...।

पत्र लिफाफे में सरका पुरबी दी ने एक दीर्घ धुआँया निःश्वास भरा।

"होम चलते हैं। तुरंत एक मीटिंग रखते हैं।"

पुरबी दी का आशय भाँप रूमा ने दबी जुबान में प्रतिवाद किया, "कल रख लेते हैं दी, बाकी सब तो होंगी... बरुआ दी से भेंट शायद न हो पाए।"

"पुरबी दी की भौंहें चढ़ीं, क्यों?"

"सुबह बता रही थीं कि रवींद्र भवन में उनके नए नाटक की स्टेज रिहर्सल होनेवाली है। साढ़े चार के आसपास। तीन बज रहे हैं।"

"नाटकों में उनकी दिलचस्पी इधर कुछ ज्यादा ही बढ़ गई है। बच्चियों की कॉउंसलिंग में मन नहीं लग रहा लगता।"

"बात ये नहीं..."

"प्रिंसिपल ने बच्चियों की उद्दंडताओं का जो ब्योरा लिख भेजा है, उस रामायण से तो यही लग रहा है... जितना समय उन्हें दिया जाना चाहिए, नहीं दिया जा रहा।"

"समय और तवज्जो में कोई कटौती नहीं बरुआ दी की ओर से। हाँ, दिक्कतें हैं उनकी। बड़े दिनों से शायद उनसे आपकी कोई बातचीत नहीं हुई।"

"नौकरी कोई है नहीं उनकी। पेंशन मिलती है नाम मात्र की। उससे तो ट्राम से 'होम' आने-जाने का किराया तक नहीं निकल पाता उनका।"

"नाटकों में काम किए बिना..." रूमा बरुआ दी की पैरवी में सन्नद्ध हुई।

"क्यों... बेटी मदद नहीं करती?"

"करती थी।"

"थी, यानी?"

"जगदलपुर, मध्य प्रदेश में है वह आजकल।"

"तबादला हो गया?"

"नहीं। नौकरी छोड़ किसी अनवर नाम के युवक के संग ब्याह रचा घर-बार बसा लिया उसने। माँ की फिक्र छोड़ दी है।"

पुरबी दी क्षणांश मौन हो आई। गलत नहीं है, रूमा! मीडिया, संगठनों, संगोष्ठियों, दानदाताओं के मतलब-बेमतलब उलझावों से घिरी हुईं वे इधर 'होम' की अपनी सहयोगिनों से लगभग कट-सी गई हैं। आपसी संवाद मात्र निर्देशों और आदेशों तक सिमट-सिकुड़ रह गया है।

"चलें! औरों से मिलते हैं!"

रूमा ने लक्ष्य किया। सदेव तनी रहनेवाली पुरबी दी की देह चाबी कम हो रही गुड़िया-सी उठते हुए डगडगाई।

'होम' में आज किसी की खैर नहीं। न केतकी दी की, न सुतपा की, न मालिनी की बच जाएँगी केवल बरुआ दी। पेशी उनकी भी कल जरूर होगी। मगर तब तक भीतर व्यापी तरेड़ की तीव्रता निश्चित ही कुछ सुस्थिर हो चुकी होगी। अबोध बच्चियों की मानसिकता में दबे जड़े कुसंस्कारों को धोने-पोंछने की महती ज़िम्मेवारी एकमात्र बरुआ दी की है। प्रिंसिपल का पत्र चिपकाया हुआ नहीं था। पुरबी दी के सामने रखने से पूर्व वह उसे पढ़ चुकी थी। अनुशासन बनाए रखने के नाम पर प्रिंसिपल बच्चियों को किसी भी बहाने स्कूल से बाहर कर सकती हैं। दाखिले के समय कम तेवर नहीं दिखाए उन्होंने। पुरबी दी का ही जिगरा था कि कानून और सरकार-दोनों को नंगा कर कटघरे में ला पटका उन्होंने। लिखित आदेशों के समक्ष झुकना लाचारी थी प्रिंसिपल की। पुरबी दी का हठ था। बच्चियाँ सामान्य स्कूलों में सामान्य बच्चों के बीच उनके साथ ही पढ़ेंगी...।

पुरबी दी करवटों में नींद तलाश रहीं। आँखें मींचे नींद का मनुहार करना अब उनके लिए असाध्य हो रहा।

रह-रहकर प्रश्न खूँद रहा। ऐसा कैसे हो सकता है कि उनकी एक भी बच्ची सवालों के जवाब न दे पाई हो! आधा-अधूरा कुछ तो प्रयत्न किया ही होगा किसी ने!

प्रिंसिपल के खत में विनय के बावजूद पूर्वाग्रह अपना मुँह नहीं छिपा पा रहा था। दोष उनका नहीं। उनके पास व्यवस्था और अनुशासन की अभेद भित्ति है, जिसकी आड़ में वे जब चाहें-अपनी शिक्षिकाओं की अक्षमता और लापरवाही उनके मत्थे से अलग कर औरों के सिर मढ़ दें! उनकी मासूम बच्चियों के लिए तो यह काम और भी आसान है...।

रही शिक्षकों की बात तो उनकी जिंदगी का उद्देश्य महीने की शुरुआत में तनखाह का लिफाफा हासिल करना भर मात्र रह गया है।...

मीटिंग में काफी खुलकर बातचीत हुई थी। अकेली वे ही क्षुब्ध नहीं थीं। पढ़ाई में बच्चियों की घोर अरुचि और नतीजों को लेकर सभी सहयोगिनों के मन में दु:ख और तनाव का वितान तना हुआ था। उन बच्चियों की तईं विशेष जिन्हें वय के मुताबिक दूसरी या तीसरी कक्षा की छात्राएँ होना चाहिए था। प्रिंसिपल की चिट्ठी सुनकर तो सभी के दिल और बैठ गए। उन्होंने सख्त स्वर में ने सभी को फटकारा। सभी निष्ठभाव से अपने-अपने काम में संलग्न हैं तो उस श्रम का परिणाम नजर क्यों नहीं आ रहा? वे तो लगातार इस कोशिश में रही हैं और हैं कि 'होम' में कलकत्ते के कोने-कोने से वे बच्चियाँ रहने पढ़ने आएँ, जिन्हें माँ की मजबूरी तले अपना बचपन घोंटना पड़ रहा।स्वस्था परिवेश और स्वस्थ वातावरण में वे पल-पुस सकें। भविष्य बना सकें।

केतकी दी की आँखें गीली हो आईं। फटकार की अवमानना से नहीं, प्रयत्नों की निष्फलता अनायास घुमड़ आई। 'होम' की देखरेख की पूरी ज़िम्मेवारी उनके ज़िम्मे हैं। दिन-रात वह बच्चियों के संग रहती हैं। उन्हें क्या खाना है, क्या पहनना है, कब नहाना है, किसे नहीं नहलाना है, किसे दूध पिलाना है सोने से पूर्व, किसे नहीं देना है। खाँसी सर्दी के चलते सबके प्रति सतत चौकन्नी दृष्टि रखनी पड़ती है उन्हें। बच्चियाँ उन्हें 'दीदी' माँ कहकर पुकारती हैं। पुरबी दी ने ही सिखलाया है उन्हें।

विधवा होने के ठीक तीसरे वर्ष बच्चों से नाता तोड़ केतकी दी 'होम' को समर्पित हो गई थीं। चारों बहुओं की चाकरी करने की बनिस्बत उन्होंने शेष जीवन मथुरा, वृंदावन

में गुजारने के बजाय जीवन को उद्देश्यपूर्ण बनाने का निश्चय किया। उनके विरक्त ऊबे तन-मन को प्रेरित करने का श्रेय पूर्णरूपेण पुरबी दी को ही जाता है। उन्होंने ही समझाया था - अपना घर-संसार वे भोग चुकीं। बहू-बेटों को अपना घर-संसार अपनी लाग लगन के संग भोगने दें। वे आएँ और उन लोगों से जुड़ें जिनको उनकी जरूरत है। देह-व्यापार के नरक में पड़ी सड़ रही निर्वासित दुर्गाओं की बच्चियों को पालें। देवी माँ की सेवा में मोहपाश खोलें। असली भक्ति करें...।

पुरबी दी सोदाहरण खड़ी थीं उनके सामने। दिवंगत पति के मित्र साहा साहब की ही तो इकलौती बेटी थीं पुरबी दी!

पुरबी दी ने न घर-संसार बसाया, न केतकी दी ने उन्हें कभी ब्याह न करने और स्वयं का घर-परिवार न रचने-गढ़ने पर बिलखते-संतप्त होते ही पाया। बस, एक ही धुन उनके सिर रात-दिन चढ़ी दिखी। देह-व्यापार में लिप्त मजबूर स्त्रियों की संतानों को-विशेष रूप से लड़कियों को उस नरक से बाहर खींच उन्हें भविष्य की समर्थ, दक्ष, विवेकपूर्ण, आत्मनिर्भर स्त्री बनाना है, जो अपने होने का रजिस्टर स्वयं आप बने। पूँजी के अभाव में पुरबी दी ने अपने दो तल्ले के मकान को 'होम' में परिवर्तित कर स्थान की समस्या से छुटकारा पाया। बाबा वकील थे। टालीगंज में उनके छोटे-से चैंबर को उन्होंने अपना दफ्तर बना लिया। उसी के नीचे एक कमरा स्वयं के रहने-खाने के लिए किराए पर ले लिया। 'लेक गार्डन' के पड़ोसियों और नाते-रिश्तेदारों ने उनके सामाजिक परोपकार की भावना को घर-फूँक तमाशा माना और बिन ब्याही युवती की सनक। आगे चलकर उसके विश्लेषणों में कुछ मौलिक अध्याय और जुड़े। मसलन, यह भी कि इसके पीछे सेवा-भावना कम, प्रचार पाने और सुर्खियों में बने रहने की महत्वाकांक्षा मुख्य पेंच है।

चादर देह से खींच पुरबी दी उठ बैठीं।

करवटों के अधीन निष्क्रय पड़े रहना उन्हें वक्त को नाली में फिजूल उड़ेल नष्ट कर देने जैसा कष्टकर लगा। सोचा, कॉफी बना लें और चैतन्य हो पढ़नेवाली मेज पर जा बैठें। संग ही रहनेवाली नौकरानी बूढ़ी मौसी को नींद से जगाना उचित नहीं लगा। यह अलग बात है कि उनकी आहट से कभी-कभार मौसी की नींद उचट जाती है और वे जिदिया जाती हैं कि वे ही उनके लिए कॉफी बनाएँगी। रसोई में चूहों की खटर-पटर ने याद दिलाया। मौसी ने न जाने कब से उनसे कह रखा है एक चूहेदानी मँगवाने को। वे हैं कि उन्हें व्यस्तता में स्मरण ही नही रहता कि 'होम' में ही किसी के हाथ पैसे पकड़ा दें और चूहेदानी लाने का ज़िम्मा उसे थमा दें।

सुतपा ने शिकायत भरे लहज़े में उन्हें टोका था : बच्चियों को समय के साथ जोड़ने के चक्कर में उनसे बहुत बड़ी गलती हुई है। जिस रोज से 'होम' में टी.वी. आया है, लड़कियों के लक्षण दिन-प्रतिदिन रंग बदल रहे। पियासी बड़ी है। उनकी सरदारी भी वही करती है। टी.वी. चलाना भी सीख गई है। उनका आदेश है कि राता खाना खाने के उपरांत बच्चों को दूरदर्शन समाचार सुनवाए जाएँ और एकाध ज्ञानवर्धक कार्यक्रम भी उन्हें दिखाए जाएँ। लेकिन केतकी दी के लाख मना करने के बावजूद लड़कियाँ नियम का पालन नहीं करतीं। फिल्मी नृत्य और गाने देखने का हठ ठान लेती हैं। एक बार तो उसने रात नींद उचटने पर देखा कि हॉल में टी.वी. चल रहा है और सभी फूहड़ अँग्रेज़ी गानों पर नाचनेवालों का अनुकरण करती हुई कमर मटका-छाती हिला रही हैं।

रूमा को उसने बहुत पहले यह बात बताई थीं कि जो लड़कियाँ उसके लाख प्रयत्नों के बावजूद बांग्ला का ककहरा ठीक से बोल-लिख नहीं पातीं, वे टी.वी. पर प्रदर्शित नृत्य और गीतों को इतनी जल्दी पकड़ लेती हैं कि देखकर दाँतों-तले उँगली दबा लेनी पड़ती है।

सुतपा का टी.वी. हटवा देने का प्रस्ताव पुरबी दी को तर्कसम्मत नहीं लगा था। न समस्या का हल! पढ़ने-लिखने की लगन अपनी जगह है, टी.वी. अपनी। पढ़ाई को लेकर और लगाव जब तक बच्चियों में पैदा नहीं होगा, पैदा नहीं किया जाएगा, तब तक पढ़ना उनके लिए जरूरत नहीं बन पाएगा। फिर देश, समाज, विश्व की सूचनाओं से उन्हें वंचित कैसे किया जा सकता है! उनके लिए यह भी जानना अनिवार्य है कि उनकी असली दुनिया और समाज कौन सा है। वह नहीं जो आँखें खोलते ही उन्होंने अपनी माँ के इर्द-गिर्द देखा पाया।

पियासी को वह किस मुश्किल से निकालकर ला पाई हैं!

माँ के दलाल ने उसे तीन हजार में एक ऐसी औरत को बेच दिया था, जो उसका धर्म-परिवर्तन कर, उसे 'जरीना' नाम देकर अपने संग 'जद्दा' ले उड़ने की तैयारी कर रही थी। पियासी की ही भाँति उसने तीन अन्य बच्चियों का सौदा कर रखा था। जद्दा में वह चकला चलाती थी। वहाँ के सख्त कानून के भय से वह बच्चियों को अपनी गोद ली बच्चियाँ बनाकर सँग ले जा रही थी। पियासी की माँ ने ही पुरबी दी को गुहार लगाई थी। पुलिस की मदद से पुरबी दी ने पियासी समेत अन्य तीनों को भी छुड़ाकर अपने कब्जे में ले लिया था। पुलिस के हत्थे चढ़ते ही उस औरत ने सच्चाई कबूली ली थी कि वह युवतियों को खरीदकर अपने संग नहीं ले जाना चाहती। वे किसी भी

भारतीय या पाकिस्तानी ग्राहक के संग मेल-मिलाप बढ़ाकर उसे छोड़ चंपत हो सकती हैं। लड़कियाँ उसी के संरक्षण में पलेंगी-बढ़ेंगी तो उसके नियंत्रण में रहेंगी।

मालिनी ने बताया - शिवानी और सुरंजना पढ़ती हैं या नहीं, मगर उसके कांथा और ब्लॉक प्रिंटिग के प्रशिक्षण में वे गहरी रुचि ले रहीं हैं। अपनी नन्हीं उँगलियों से सुरंजना जिस फुर्ती से सुईं में धागा डालती है और कांथा के टाँके उठाती है - उसके लिए अचरज का विषय है। उसे तो यही लगता है कि सुरंजना टाँकों में कुछ और पारंगत हो जाए तो निश्चित ही देश की संभवतः सबसे छोटी कांथा कलाकार होगी।

सुनकर पुरबी दी के चेहरे पर क्षणांश संतोष की पुलक कौंधी। अगले ही पल तनाव के झुटपटे में बिला भी गई।

"वह तो सब ठीक है मालिनी! यह उनका अतिरिक्त गुण हो सकता है मगर... पढ़ाई... पढ़ाई का क्या होगा?"

"अपना 'होमवर्क' ये स्वयं लिखकर क्यों नहीं लाती? समझाती नहीं रूमा, उन्हें तुम?" अपने स्वर की उग्रता उन्हें स्वयं चुभी थी।

"रोज ही समझाती हूँ। गौरी और शिवानी को छोड़कर शायद ही कोई और लड़की अपना होमवर्क स्वयं लिखकर लाती हो। ...एक-एक के पीछे पड़ती हूँ, दी।

सच तो यह है कि सभी को मैं उतना समय नहीं दे पाती जितना दिया जाना चाहिए। कुछ दुष्ट भुच्च-सी निष्क्रयता ओढ़े प्रतीक्षा में ही बैठी रहती हैं कि मैं कब औरों से निपटूँ तो उनकी बारी आए।"

"मौखिक में भी कुछ नहीं करके आई हैं। सामने खूब कविताएँ सुनाती हैं..." रूमा की आवाज हताशा में थर्रा आई थी...।

उनका संघर्ष व्यर्थ जाएगा? नचनियाँ बनेंगी। चेहरे लीप-पोत माँ की भाँति चौराहों पर खड़ी हो ग्राहक फँसाएँगी? रिक्शे-ताँगेवालों से फँस बच्चे जनेंगी... उफ्... कुछ नहीं बदल पाएँगी वह... कुछ नहीं!

पुरबी दी के पाँव नदी के बीचोबीच उखड़ गए हैं। वे ऊभ-चूभ हो रहीं हैं। कोई टहनी हाथ नहीं लग रही कि जिसके सहारे वे लटक लें। बच लें।

कुछ लिखने लगी हैं वे अपनी मेज पर बैठते ही। ...डायरी के सीने में सिर रख रही हैं शायद! वही तो एक ठिकाना है बाबा, माँ के न रहने पर, जहाँ उन्हें सहलाहट और थपकियाँ नसीब होती हैं!

कानून उनका विषय नहीं रहा। बाबा का विषय था। बाबा का सान्निध्य जैसे उनकी कक्षाएँ हो गईं। कम लड़ाई लड़ी उन्होंने इन बच्चियों को स्कूल में भरती करवाने के लिए! कब पैदा हुईं, बाप कौन है इनका, माँ इन्हें लेकर ख़ुद क्यों नहीं आतीं स्कूल? क्या उनके मन में ललक नहीं कि उनकी बच्चियाँ पढ़ें?

...अभागियों को 'सेक्स वर्कर' माना जाए। कानूनी मान्यता मिले 'सेक्स वर्करों' के रूप में। नागरिक सुविधाएँ मिलें। राशन कार्ड बने। पानी मिले। टट्टी मिले। चिकित्सा सुविधा मिले। वोट डालने का अधिकार मिले। सरकार की राजनीति लहलहाए। नए वोट-बैंक मिलें। वह तो पुरबी दी विरोध में कूद पड़ीं। नागरिक सुविधाएँ उनका बुनियादी अधिकार है। उसके लिए उन्हें 'सेक्स वर्कर' का तमगा पहनाने की कतई जरूरत नहीं। उनका अलग समुदाय बनाने की कोई जरूरत नहीं। वैसी परिस्थिति में 'सेक्स वर्करों' की औलादों का समाज की मुख्य धारा में विलय संभव होगा?

आम, इमली घूरे पर उगने से आम या इमली नहीं रह जाते? इसी समाज की वे हैं। उसी का अंग, अंश-तो उनकी औलादों को समाज से बहिष्कृत कैसे किया जा सकता है?

उन मजबूरियों के जबड़े तोड़ना जरूरी है, जो औरत के सामने देह का विकल्प परोसते बाज नहीं आते। पुरबी दी उसे ही तोड़ने निकली हैं। ...कुछ ने स्वेच्छा से अपनी बेटियों को उनकी गोद में डाल दिया। कुछ अब भी अविश्वास से घिरी अपनी बेटियों को अपनी सीली छाती से चिपकाए अपने होने की ऊष्मा सेंक रहीं। उन बस्तियों के बजबजाते अँधेरों को काटने वे लगभग रोज ही वहाँ पहुँच रहीं हैं। उन्हें मना-समझा रहीं हैं। अपनी जिंदगी के फंदे तो वह अपने मुताबिक बुन नहीं पा रहीं। बेटी, बेटों की बुन पाएँगी? कितने बेटों को पुरबी दी ने ले जाकर अनाथाश्रम में प्रवेश दिलाया है। वहीं रहें, पढ़ें, सीखें। वहाँ के अभाव उन अभावों से कहीं अधिक सुवासित हैं। कम-से-कम वहाँ किसी भविष्य का ककहरा तो है उनकी पाटी पर!

उमड़न का लावा अचानक यूँ ही तो नहीं फूट रहा! हाथ आँखें काँछने उठे पुरबी दी के।

- बेवकूफ बच्चियाँ नहीं जानतीं कि उनका फेल होना मात्र उनका फेल होना भर नहीं है, उनका फेल होना है... उनके मोरचे का ढहना है... वे स्वयं को कहीं रोप नहीं पाएँगी तो अँकुआएँगी कैसे...?

शायद सुपता का कहना गलत न हो। भोंडे नाच-गानों का अनुकरण करते देर नहीं लगती बच्चियों को! ...शायद यह भी सही हो कि देहों की भी क़िस्में होती हैं और वे अपनी क़िस्म को लेकर ही जनमती हैं, फलती फूलती हैं!

आगे कलम निःशब्द हो रही है पुरबी दी की!

मटकती हैं तो कलम उनका ऐसे ही साथ छोड़ देती है...

सुबह देर से आँख खुली पुरबी दी की।

मौसी ने पुकार मचाई। अचरज से भर। हारी-बीमारी में भी नियम टूटते कभी देखा जो नहीं, "ऊपर दफ्तर में नहीं बैठना आज?"

"इच्छा नहीं हो रही मौसी!"

"तबीयत तो ठीक है?" मौसी को मात्र उनकी इच्छा की बात सही नहीं लगी।

"कैसी हूँ, क्या बताऊँ!"

"राजरहाट जाना था न आज! कांथावाली औरतों की संगत करने।"

"सब व्यर्थ का आडंबर है।" वितृष्णा स्वर में दबंग हुई।

कुछ समझ में नहीं आया मौसी को। सवेरे की टहल में उलझ गईं वे। उलझे हुए ही पूछा, "दोपहर में खाओगी क्या?"

दोपहर में छठे-छमासे ही उनके लिए रसोई बनती है। मौसी का पूछना अस्वाभाविक नहीं था।

"अपने लिए जो चाहो, सो बना लो। मुझे केवल एक कम कॉफी भर की जरूरत होगी। दूध मत डालना।" पुरबी दी ने कहकर आँखें मूँद लीं। उठने की शक्ति हो तब तो उठ पाएँ।

पड़ी रहीं बिस्तर पर। कॉफी घुटकने भर के लिए उठीं। फिर लुढ़क गईं। दिमाग में रेत उड़ रही है। तूफानी आँधी चल रही है। रेत उन्हें जबरन समाधि दे देगी। वे समाधि ले लेना चाहती हैं। अपने-आप को और कहाँ छुपाएँ? गले में बाँध टूट रहे। ऐसे लीलते दिनों से सामना होगा-सोचा नहीं था उन्होंने! ये टूटे बाँध आँखों के रास्ते बह रहे... बाबा, बाबा! वे पुकार रहीं हैं अँधेरे में। बाबा का हाथ हाथ में नहीं आ रहा...

दोपहर अढ़ाई के आसपास घर की घंटी ने बेसब्री दरसाई तो मौसी को सने भात से हाथ खींच उठना पड़ा। झल्लाहट कुंडी खोलते ही अंतर्धान हुई - सामने खिली-खिली-सी रूमा को खड़े पाया।

"पुरबी दी को तो बारह तक वापस लौट आना था राजरहाट से-ताला पड़ा हुआ है ऊपर दफ्तर में?"

मौसी ने बिस्तर की ओर इशारा किया - "घर छोड़ती तब न पहुँचती!"

रूमा सिरहाने आ टिकी चिंतित-सी, "दी... दी तबीयत?"

"उठना ही नहीं चाहती हूँ... उठकर करूँ क्या?" पुरबी दी ने आत्मालाप-सा किया आँखें खोल।

अधीर रूमा अपनी बात पर आना चाहती थी। पूछा, "दी, आपने सभी लड़कियों के नतीजे के कार्ड गौर से देखे थे?"

"हाँ अ s-s-s-"

"गौरी और रत्ना का कार्ड भी देखा था?"

"सबके पढ़े तो उनका भी पढ़ा ही होगा।"

"नहीं पढ़ा। मेरा भी ध्यान नहीं गया आवेश में।"

"क्या मतलब?"

"रत्ना और गौरी का कार्ड उसमें था ही नहीं। उन्हें मिला ही नहीं था। कल उनकी क्लास-टीचर ही नहीं आई थी। आज मिले हैं। उनके नतीजे के कार्ड। देखिए!"

कार्ड खोलकर रूमा ने उनकी आँखों के सामने फैला दिए। अनिच्छा से पुरबी दी की आँखों ने नंबरों पर दृष्टि डाली, "अरे s-s-s, बच्चियाँ पास हो गईं!" पुरबी दी देह से

चादर फैंक झपाटे से उठ बैठीं। पलंग पर तिरछे हो उन्होंने रूमा को विह्वल हो अंक में भर लिया। आँखें 'भल' बहने लगीं। होठ अस्फुट से बुदबुदा उठे "मैं पास हो गई रूमा... पास हो गई मैं...!"